फिर से, टीका से। **यह, रत्नत्रय के स्वरूप का कथन है।** रत्नत्रय अर्थात् क्या? आत्मा आनन्द-ज्ञानस्वरूप है, उसकी अन्तर अनुभव में प्रतीति, उसका ज्ञान और उसमें लीनता (होना), वह रत्नत्रय है, वह मोक्ष का मार्ग है और धर्म है। **यह, रत्नत्रय के स्वरूप का कथन है।** निश्चयरत्नत्रय इसने अनन्त काल में कभी किया नहीं। बाहर से मानकर, व्यवहार से मानकर भटककर मर गया। अन्तर स्वरूप चिदानन्द निश्चय से पर का कर्ता तो नहीं। शरीर और वाणी का कर्ता भी आत्मा नहीं। कर्ता तो नहीं, परन्तु उसे जानना, यह भी व्यवहार है। आहाहा! जानना भी ज्ञायक ज्ञायक का है, ऐसा भेद भी व्यवहार है। आहाहा! रत्नत्रय में मैं मात्र ज्ञायक हूँ, ज्ञायक, ज्ञायक का है—ऐसा भेद भी नहीं। ज्ञायक पर को जानता है—ऐसा तो नहीं; पर का कर्ता है—ऐसा तो तीन काल में नहीं। आहाहा! परन्तु मैं पर को जानता हूँ, यह भी असद्भूत व्यवहार है। यह भी नहीं; और आत्मा, आत्मा को जानता है, यह भी सद्भूत व्यवहार है, यह भी नहीं। आहाहा! ज्ञायक-ज्ञायकस्वभाव की अन्तर्दृष्टि होना—सम्यग्दर्शन, उसका विषय अकेला ज्ञायक है। भेद नहीं। आहाहा! ऐसे रत्नत्रयस्वरूप का कथन है।

चतुर्गति संसार में परिभ्रमण के कारणभूत... चार गतियों में भटकता हुआ नरक और निगोद... आहाहा! अनन्त-अनन्त भव किये। **तीव्र मिथ्यात्वकर्म की प्रकृति से प्रतिपक्ष...** चार गतियों में भटकने की तीव्र मिथ्यात्व की प्रकृति जो है, उससे **(विरुद्ध) निज परमात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान-...** आहाहा! निज आत्मा अन्दर चिदानन्द प्रभु ज्ञान

और आनन्द का दल है। आत्मा आनन्द का दल है, वह निज आत्मा परमात्मतत्त्व, **निज परमात्मतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान-...** उसका अन्तर्मुख होकर सम्यक्श्रद्धान, वह समकित है। आहाहा! अन्तर्मुख होकर अन्तर आत्मा का ज्ञान करना, वह ज्ञान है और अन्तर्मुख में आचरण करना, स्वरूप में आचरण करना, वह चारित्र है। आहाहा! बाह्य क्रियाकाण्ड, वह कोई चारित्र नहीं है। पंच महाव्रतादि, वह कोई चारित्र नहीं है। वह तो दुःख का कारण, बन्ध का कारण है। आहा...!

यहाँ कहते हैं कि **निज परमात्मतत्त्व...** निज परमात्मतत्त्व वस्तु अन्दर आत्मा परमात्मा है। परन्तु जँचे कैसे? आहाहा! पर परमात्मा अनन्त तीर्थंकर, सिद्ध आदि हो गये। यह तो निज परमात्मतत्त्व। अपना निज परम आत्म परमस्वरूप तत्त्व जो त्रिकाल, ध्रुव, अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति आदि अनन्त स्वरूप निज परमात्मतत्त्व का सम्यक् श्रद्धान, उसका सम्यक् अनुभव... आहाहा! उसका नाम सम्यग्दर्शन है। अन्तर्मुख निज परमात्मतत्त्व के सन्मुख होकर विकल्प और राग से भी भिन्न होकर, भेद से भी भिन्न होकर, वह आत्मा ज्ञान है और आत्मा ज्ञानी है-इस भेद को भी छोड़कर, अभेद में सम्यक्श्रद्धान होना, इसका नाम धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म का पहला सोपान कहा जाता है। आहाहा! लोगों को अनजानी चीज़ अनन्त काल में कभी की नहीं। जो किया, वह सब संसार में भटकने का (किया)। नरक और निगोद में अनन्त भव किये। चींटी, कौआ आदि अनन्त भव (किये)। आहाहा!

भवभ्रमण का कारण जो मिथ्यात्व, उससे विरुद्ध सम्यक्श्रद्धा। आहाहा! चैतन्यस्वरूप जो ज्ञायक भगवान पूर्णानन्द प्रभु, उसकी शक्ति और स्वभाव की प्रतीति और श्रद्धान, वह सम्यग्दर्शन है। उसका सम्यग्ज्ञान-चिदानन्दस्वरूप भगवान आत्मा का ज्ञान, वह ज्ञान है। शास्त्रज्ञान, वह ज्ञान-बान है नहीं। आहाहा! वह ज्ञान और आचरण। सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित ज्ञानस्वरूप में आचरण करना, ज्ञानस्वभावी भगवान आत्मा में आचरण अर्थात् रमना। आहाहा! दया, दान, व्रत, भक्ति, क्रिया, वह कोई आचरण नहीं है; वह तो कुआचरण है। आहाहा!

भगवान आत्मा पूर्णानन्द परमतत्त्व के सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान और उसका आचरण श्रावक को भी (होता है-ऐसा) यहाँ कहते हैं। उसे श्रावक कहते हैं। ये वाड़ा के श्रावक-

बावक, वे कोई श्रावक है नहीं। ये सब भटकनेवाले हैं। आहाहा! वाड़ा में हम श्रावक हैं और जैन हैं। जैन है ही नहीं। जैन तो उसे कहते हैं 'घट-घट अन्तर जिन बसे अरु घट-घट अन्तर जैन, मतमदिरा के पान सों मतवाला समझे न।' अपने मत के आग्रह और अभिप्राय के कारण... घट-घट में जिन बसता है, वह जिनस्वरूप ही है। उसका अनुभव -प्रतीति और रमणता करना, वह जैन है। बाकी जैन-बैन है नहीं। आहाहा! यहाँ सम्यग्दर्शन-ज्ञान तीनों के उपरान्त आचरण लिया है। तो श्रावक को भी अन्दर स्वरूप का आचरण होता है। आनन्दस्वरूप भगवान अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप के श्रद्धा-ज्ञानपूर्वक अन्दर आचरण अर्थात् रमना, स्वरूप में रमना, वह आचरण है, वह श्रावक को होवे तो वह सच्चा श्रावक है। आहाहा!

आचरणस्वरूप शुद्धरत्नत्रय... ये तीन—दर्शन-ज्ञान और चारित्र। स्वरूप की अन्तररमणता। इन शुद्धरत्नत्रय परिणामों का। ये इसके परिणाम हैं। भगवान आत्मा त्रिकाली द्रव्य है, परन्तु उसकी श्रद्धा-ज्ञान और रमणता, वह परिणाम-पर्याय है। उन **परिणामों का जो भजन...** आहाहा! परिणामों का भजन। परिणामी का नहीं कहा। सम्यग्दर्शन-ज्ञान और अन्दर रमणता, उसका भजन करना अर्थात् एकाग्रता करना, इसका नाम भगवान भक्ति कहते हैं। भगवान की भक्ति और यात्रा-वात्रा सब राग है। वह कोई धर्म-बर्म नहीं है, वह शुभराग है। अशुभराग से बचने के लिये शुभराग आता है, परन्तु वह धर्म नहीं है, वह मुक्ति का कारण बिल्कुल नहीं है। यात्रा और भक्ति और सम्मेदशिखर की यात्रा, गिरनार की यात्रा और शत्रुंजय की यात्रा, वह सब राग की क्रिया है, वह धर्म नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं **शुद्धरत्नत्रय-परिणामों का जो भजन...** आहाहा! **वह भक्ति है;...** उसे परमात्मा जिनेश्वरदेव तीन लोक के नाथ अनन्त तीर्थंकर उसे भक्ति कहते हैं। दुनिया भगवान की भक्ति करके मानती है, वह तो पुण्य है; धर्म नहीं। वह कोई धर्म नहीं है। सबेरे उठकर भगवान की पूजा और वन्दन करे, वह सब पुण्य है, धर्म नहीं। वह जन्म-मरण का अन्त करनेवाली चीज़ नहीं है। उससे तो जन्म-मरण होता है, भवभ्रमण होता है। आहाहा! कुछ सुना न हो। अन्तर की चीज़ छोड़कर बाहर की चीज़ में जितना रुके, वह सब संसार का कारण है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि **शुद्धरत्नत्रय-परिणामों का जो भजन, वह भक्ति है;**

आराधना ऐसा उसका अर्थ है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान की आराधना, सेवा... आहाहा! शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा परमानन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा अन्दर है। उसके सन्मुख की सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र की आराधना... आहाहा! उसकी सेवा, (ऐसा) **उसका अर्थ है।** उसे आराधना कहते हैं। बाहर की चीज़ की आराधना नहीं। अन्तर के परिणाम की आराधना। परिणाम भी कैसे?—कि निर्विकल्प। आहाहा! वीतरागी श्रद्धा-वीतरागी ज्ञान और वीतरागी आचरण तीनों की आराधना करने का नाम भक्ति है। आहाहा!

एकादशपदी श्रावकों में जघन्य... श्रावक को ग्यारह प्रतिमा है। सम्यग्दर्शन होने के पश्चात्, आत्मा का अनुभव होने के पश्चात्। वस्तु प्रतीति में कब आती है? उसका जो सामर्थ्य, उसका जब ज्ञान में भान हुआ, आत्मा की जितनी सामर्थ्य और शक्ति है, उतना ज्ञान में और श्रद्धा में आया, उस निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञान को समकित-ज्ञान कहते हैं। इसका नाम धर्म है। बाकी धर्म-बर्म थोथा है। भक्ति-पूजा करे, गिरनार की यात्रा और यह सब थोथा है, शुभभाव है, पुण्य है, बन्धन का कारण है। आहाहा! ऐसा माने कौन? बाहर में धमाल... धमाल... गजरथ करे, बड़े रथ निकाले, वह सब धमाल है।

यहाँ तो भगवान आत्मा अन्दर पूर्णानन्द पूर्ण शक्ति से भरपूर है। उसकी अन्तर में प्रतीति-ज्ञान और रमणता, वह आराधना और वह आत्मा की सेवा है। उसका नाम आत्मा की सेवा है। श्रावक के ग्यारह भेद हैं। **एकादशपदी श्रावकों में जघन्य छह हैं,...** नीचे (फुटनोट में) है। पहले से छह प्रतिमा जघन्य। **मध्यम तीन हैं,...** सात, आठ, नौ। **तथा उत्तम दो हैं।** दस और ग्यारह। **यह सब शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करते हैं।** आहाहा! तब उसे श्रावक कहा जाता है। प्रतिमाधारी श्रावक तब कहा जाता है कि जब अपने शुद्धरत्नत्रयस्वरूप भगवान आत्मा की सेवा करे, उसकी रमणता करे, तब प्रतिमाधारी कहा जाता है। आहाहा! ऐसा नया धर्म निकाला होगा? अभी तक तो यह सब सुनते थे कि ऐसा करना, ऐसा करना। यह और ऐसा कहाँ से निकाला? सर्वज्ञ भगवान का यह मार्ग अनादि से है। अज्ञानी को सुनने को मिला नहीं, इसलिए कहीं दूसरी चीज़ हो जाएगी? आहाहा!

एकादशपदी प्रतिमायें हैं। उनमें छह प्रतिमा जघन्य; सात-आठ-नौ मध्यम; और दश तथा ग्यारह उत्तम है। आहाहा! **यह सब शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करते हैं।** आहाहा! श्रावक तो उसे कहते हैं, प्रतिमाधारी उसे कहते हैं कि अन्दर में शुद्धरत्नत्रय की सेवा करे,

शुद्धरत्नत्रय को प्रगट करके रमे, उसका नाम प्रतिमाधारी श्रावक कहा जाता है। है या नहीं ? ब्रह्मचारीजी ! आहाहा !

मुमुक्षु : आत्मा की भक्ति करता है या पर्याय की भक्ति करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय की। पर्याय की भक्ति का अर्थ लक्ष्य द्रव्य पर है। आहाहा ! अन्तर्मुख है न ? परिणाम अन्तर्मुख है न ? तो परिणाम की भक्ति का अर्थ (यह कि) द्रव्य पर लक्ष्य है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों का लक्ष्य द्रव्य पर है। आहाहा ! दुनिया ने तो बाहर से मनवा लिया और अज्ञानी ऐसे के ऐसे चल निकले। भगवान की भक्ति करो, सबेरे पूजा करो, जयनारायण। उससे धर्म होगा। ऐसा तो अनन्त बार किया है। महाविदेहक्षेत्र में अनन्त बार उत्पन्न हुआ है। महाविदेह में तो भगवान तीर्थंकर का कभी विरह नहीं होता; तो तीर्थंकर की भक्ति और सेवा समवसरण में अनन्त बार की है। परन्तु वह तो परद्रव्य की सेवा, वह तो शुभभाव-पुण्य है। वह पुण्य तो बन्धन का कारण है, भटकने का कारण है। आहाहा ! ऐसी बात ! तब नहीं करना ? ज्ञानी को अशुभ से बचने के लिये शुभभाव आता है, परन्तु है बन्ध का कारण। आहाहा ! वह मोक्ष का कारण नहीं है। मोक्ष का कारण प्रभु चैतन्य निज परमात्मतत्त्व की दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वह मोक्ष का कारण है।

शुद्धरत्नत्रय की भक्ति ग्यारह प्रतिमावाले करते हैं। आहाहा ! उन्हें प्रतिमाधारी और श्रावक कहा जाता है। बाकी तो थोथा है। आहाहा ! शुद्धरत्नत्रय की भक्ति श्रावक करे, तब उसे प्रतिमाधारी कहा जाता है। प्रतिमाधारी को शुद्धरत्नत्रय का सेवन होता है। अन्दर आचरण भी होता है। आनन्द का आचरण भी होता है। आहाहा ! अरे रे ! कोई बात !

मुमुक्षु : यह ऊँची बात आप करते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऊँची वस्तु ही यह है। कहा न ? सबेरे आया था न ? कलई दीवार को स्पर्श नहीं करती। आहाहा ! कलई, कलई में रहती है, कलई। दीवार, दीवार में रहती है। दीवार को कलई स्पर्श नहीं करती। आहाहा ! क्योंकि दीवार और कलई का अस्तित्व भिन्न है। एक अस्तित्व दूसरे के अस्तित्व में जाए तो अपना अस्तित्व नहीं रहता। आहाहा ! वस्त्र में रंग लगता है, वहाँ वह रंग वस्त्र को स्पर्श नहीं करता। आहाहा ! बहुत कठिन काम है, बापू !

मुमुक्षु : कपड़ा लाल होता है न ? लाल कपड़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : लाल कपड़ा, वह तो लाल रंग है। वह कहीं टोपी लाल नहीं है। टोपी तो भिन्न है। रंग का अस्तित्व भिन्न है, टोपी का अस्तित्व भिन्न है। दीवार में जो कलई सफेद होती है, उस सफेद का अस्तित्व भिन्न है, दीवार का अस्तित्व भिन्न है। एक अस्तित्व दूसरे अस्तित्व को कभी स्पर्श नहीं करता। कलई है, वह दीवार को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! ऐसी बात कहाँ सुने? भटकने में अनन्त काल चला गया। वीतराग का सत्यमार्ग पड़ा रहा और बाहर से थोथा करके मर गया और चार गतियों में भटक मरा। आहाहा!

शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करते हैं। आहाहा! पहली प्रतिमावाला भी शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करता है—ऐसा आया न? पहली प्रतिमा है न, पहली प्रतिमा? सम्यग्दर्शन (दर्शन) पहली प्रतिमा। भले पंचम गुणस्थान है, तो भी वह शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करता है। आहाहा! तब पहली प्रतिमा कही जाती है। ऐसे ग्यारह ही प्रतिमा (वाले) शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करते हैं। मुनि तो पूर्ण शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करते हैं। आहाहा! उन्हें मुनि कहते हैं। नग्न हो गये, क्रियाकाण्ड करे, पंच महाव्रत पालन करे, वे मुनि नहीं। जैनदर्शन में उसे मुनि कहते ही नहीं। आहाहा! कठिन बात है, भाई! आहाहा!

शुद्धरत्नत्रय की भक्ति ग्यारह प्रतिमावाले श्रावक भी करते हैं और मुनि भी करते हैं। श्रावक और मुनि दोनों अन्तरात्मा से, बहिरात्मपना छोड़कर अन्तरात्मा से परमात्मा की भक्ति करते हैं। परमात्मा के ध्येय में जाते हैं। आहाहा! ऐसा कैसा मार्ग यह! शान्तिभाई! आहाहा! कभी सुना नहीं। यह सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो, रात्रिभोजन नहीं करो, तो हो गया धर्म! ऐसा तो अनन्त बार थोथा किया। राग की मन्दता होवे, पुण्य होवे तो मनुष्य-बनुष्य हो या तो धूल का-पैसे का सेठ हो। धूल-धूल। धूल का सेठ हो करोड़पति-अरबपति। उसमें भव घटता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : अफ्रीका में जन्मना पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : अफ्रीका में क्या, वह तो पुण्य बहुत होवे तो वहाँ अफ्रीका में जन्मे। आहाहा! वहाँ पैसा बहुत है अफ्रीका में। वह तो पुण्य होवे ऐसे तो जन्मे, परन्तु मरकर फिर जाए चौरासी के अवतार में। आहाहा! एक अरबपति मेरे पास आया था। वहाँ अरबपति है। अफ्रीका-नैरोबी में साढ़े चार सौ करोड़पति हैं। साढ़े चार सौ करोड़पति और

पन्द्रह अरबपति हैं। उनमें एक अरबपति मेरे पास आया था। वह ऐसा कहता था कि यह तुम्हारा दिगम्बर मण्डल, श्वेताम्बर मन्दिर में नहीं जाता, दर्शन नहीं करता। मैंने कहा— तत्त्वज्ञान होने के बाद व्यवहार कैसा होता है, यह समझ में आता है ? उसे दूसरा उत्तर तो क्या दें ? तत्त्वज्ञान-सम्यग्दर्शन होने के बाद व्यवहार कैसा होता है, उसे उसकी खबर पड़ती है। उसे ऐसा कहा जाए कि तेरी बात खोटी है ? छोटी उम्र का था। चालीस वर्ष की उम्र होगी। ३५-४०। अरबपति-अरबपति। सौ करोड़ रुपये-अरब। ऐसे पन्द्रह अरबपति हैं।

अपने मुमुक्षुओं में आठ व्यक्ति तो करोड़पति हैं। करोड़पति। उसमें क्या हुआ ? धूल में क्या है ? आहाहा! २६ दिन में ४५ लाख रुपये एकत्रित किये। हम २६ दिन रहे थे तो ४५ लाख (एकत्रित किये)। पन्द्रह लाख पहले इकट्ठे किये थे। नया मन्दिर बनाया। अफ्रीका में मन्दिर दो हजार वर्ष में है नहीं। दिगम्बर मन्दिर का नाम नहीं। दिगम्बर मन्दिर बनाया। बाईस लाख का तो मन्दिर बनेगा। बाईस लाख का। इसके अतिरिक्त तो साठ लाख दूसरे हैं। आहाहा! उसमें क्या ? कहा—जो है, वह शुभभाव है। तुम साठ लाख खर्च करो तो धर्म है, जन्म-मरण मिटेंगे-यह बात है नहीं। सुनते थे, प्रेम से सुनते थे। प्रेम से यहाँ से बुलाया था न ? और सब यहाँ के परिचयवाले थे। महाजन लोग थे। जामनगर के पास 'चेलाचंद' गाँव है और वहाँ के महाजन लोग हैं। छह हजार लोग हैं। छह हजार महाजनों की आबादी। उनमें साठ घर पक्के मुमुक्षुओं के हैं। लोगों को प्रेम बहुत। परन्तु बापू! पैसे से तुम्हें धर्म हो-यह तीन काल में नहीं। अरबों रुपये खर्च करके मन्दिर बनावे और जन्म-मरण मिटे—ऐसा तीन काल में नहीं है। यदि राग मन्द करे तो पुण्यबन्धन होगा। पैसा दे और बाहर प्रसिद्धि का अभिमान हो, हम खर्च करते हैं और हम सामने रहेंगे, तब तो पाप बाँधे। देवीलालजी! वस्तु का ऐसा स्वरूप है। चारों ओर से समेटकर आत्मा में जाना है। भगवान के स्मरण और भक्ति का एक विकल्प भी उठे, या अरब रुपयों का मन्दिर बनाने का विकल्प उठे, उससे भी हटकर अन्दर में जाना, वह धर्म है। आहाहा! कठिन बात है, बापू! पैंतालीस वर्ष से तो यहाँ चलती है। पैंतालीस वर्ष से यहाँ है। आहाहा! पैंतालीस वर्ष की उम्र में आये थे। इक्यानवें वर्ष चलता है। ९१, ९१वाँ वर्ष चलता है। नब्बे वर्ष पूरे हुए। बहुत सब देखा है। घर की दुकान थी। व्यापार किया है। सब

माल लाते थे। मुम्बई, सूरत, भरुच सर्वत्र माल लेने जाते थे। छोटी उम्र में, २० वर्ष की उम्र में। २२ वर्ष में छोड़ दिया। आहाहा! अन्दर धूल भी नहीं। दुनिया मानो प्रसन्न-प्रसन्न हो जाए। वर्ष में दो-पाँच लाख की आमदनी देखे... ओहोहो! हम सुखी हैं। (वास्तव में तो) दु:खी हैं।

मुमुक्षु : अपने बाप-दादा के पास नहीं था।

पूज्य गुरुदेवश्री : बाप-दादा के पास नहीं था और इसके पास था तो इसके पास कहाँ रहा है? इसके पास तो ममता आयी है। आहाहा! माणेकचन्दभाई के पास पैसे नहीं थे और रामजीभाई के पास पैसे आये। वे पैसे कहाँ आये? वह तो ममता आयी है। अब वापस मकान बेचकर 'चेतन' को सौंप दिया। किसका मकान और किसका कुछ...? आहाहा! अरे रे! दया, दान, का विकल्प भी उत्पन्न हो, वह आत्मा का नहीं। आत्मा उसे जानता है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! आत्मा, आत्म को जानता है—ऐसा भेद डालना, वह भी नहीं।

आत्मा ज्ञायकस्वरूप भगवान पूर्णानन्द का नाथ (है), उसमें दृष्टि लगाकर अनुभव होना, वह धर्म की पहली सीढ़ी है। धर्म का पहला सोपान वह है। बाकी सब शून्य है। आहाहा! ये पुस्तकें तो बाहर बहुत प्रकाशित हुई। बाईस लाख पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। यहाँ से बाईस लाख पुस्तकें। आठ लाख तो जयपुर से प्रकाशित हुई हैं। तीस लाख प्रकाशित हुई है। अब सात लाख मुम्बई से प्रकाशित होगी। एक पुस्तक आयी है। दूसरी सात लाख प्रकाशित होगी। प्रचार तो चारों ओर हो गया है, परन्तु अन्दर बैठना... आहाहा!

यहाँ तो कहा न? खड़ी-कलई दीवार को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! रंग, टोपी को स्पर्श नहीं करता। रंग, रंग में है; टोपी, टोपी में है। आहाहा! वस्तु की स्थिति ऐसी त्रिलोक के नाथ तीर्थंकरदेव, अनन्त परमात्मा तीर्थंकर ऐसी कह गये हैं और ऐसा कहते हैं। महाविदेह में अभी कहते हैं। सीमन्धरस्वामी भगवान साक्षात् विराजमान हैं। सभा में बाघ, सिंह, इन्द्र, देव सब वहाँ आते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : अपने को जाना है...

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ जाकर क्या करना है? आत्मा में जाना है। आहाहा! वहाँ भी

अनन्त बार जा आया है। अनन्त पुद्गलपरावर्तन किये। महाविदेह में अनन्त पुद्गलपरावर्तन; एक पुद्गलपरावर्तन में अनन्तवें भाग में अनन्त भव। आहाहा!

मुमुक्षु : उस समय आपका उपदेश सुना नहीं था। अब आपका सुनकर जाएँ तो अन्तर।

पूज्य गुरुदेवश्री : जन्म ले, उसमें क्या हुआ? जन्म तो यहाँ लिया। चिदानन्द प्रभु मैं हूँ—ऐसी उत्पत्ति करना, वह जन्म है। मैं तो आनन्द का नाथ सच्चिदानन्द ज्ञाता जाननहार मैं हूँ। मैं एक कण का भी फेरफार करनेवाला नहीं हूँ। चींटी को बचानेवाला मैं नहीं हूँ, आँख की पलक हिलानेवाला मैं नहीं हूँ। आहाहा! ऐसा प्रभु का मार्ग है।

वीतरागदेव-जिनेश्वरदेव परमात्मा, गणधर और इन्द्रों के मध्य यह कहते थे, वह बात है। यह बात वहाँ महाविदेहक्षेत्र में चलती है। आहाहा! वहाँ थे। मैं वहाँ था। वहाँ से यहाँ आया हूँ। देह छूटने के समय परिणाम ऐसे आये कि समरूप परिणाम नहीं रहे। वरना तो राजकुमार था, अरबों की आमदनी थी, हाथी-घोड़े थे। महाविदेह में मरते समय परिणाम ऐसे हुए कि उमराला में जन्म हो गया। यहाँ से ग्यारह मील दूर काठियावाड़ में आकर जन्मे। बहिन भी वहाँ थी। आहाहा! उसमें क्षेत्र क्या करे?

अन्तर भावभगवान निज परमात्मतत्त्वस्वरूप की दृष्टि और ज्ञान किये बिना उसमें रमणता कभी नहीं हो सकती। तो पहले-पहले सम्यग्दर्शन ही जहाँ नहीं, वहाँ धर्म कहाँ है? आहाहा! यह कहा न? एकादशपदी **शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करते हैं। तथा भवभयभीरु,...** भवभयभीरु। आहाहा! अरेरे! यहाँ से कहाँ जाएगा? देह छूट जाएगी, परन्तु आत्मा तो नित्य है। देह छूटकर आत्मा कहाँ अवतरित होगा? आहाहा! ऐसा जिसे भव के भय का डर है। मैं आत्मा हूँ तो अनादि-अनन्त हूँ। देह तो छूट जानेवाली है। इसकी राख हो जानेवाली है, तो यह आत्मा जाएगा कहाँ? आहाहा! इसका तो कुछ नाश होना नहीं है। अविनाशी नित्य है। ये परमाणु कहीं नाश नहीं होते। परमाणुओं की पर्याय पलटती है। आहाहा! शरीर की पर्याय पलटती है। यह पर्याय ऐसी है, वह उस राख की पर्याय होगी। वस्तु कहीं नाश पाती है? आहाहा! यह देह छूटने के पश्चात् कहाँ जाएगा? इसका अस्तित्व कहाँ रहेगा - इसकी खबर नहीं। आत्मा कुछ करता नहीं। मैं कौन हूँ? इसकी कुछ दरकार नहीं और इस दुनिया की दरकार। स्त्री, पुत्र, परिवार, धन्धा। पाप का धन्धा। पूरे दिन पाप, अकेला पाप। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि सच्चा श्रावक है, वह तो शुद्ध रत्नत्रय की भक्ति करता है। **तथा भवभयभीरु, परमनैष्कर्म्यवृत्तिवाले...** मुनि। आहाहा! परमनैष्कर्म्यवृत्ति। पुण्य की क्रिया रहित। महाव्रत के परिणाम, वह राग है, उससे रहित। आहाहा! परमनैष्कर्म्यवृत्तिवाले भाषा देखो! कैसे है जैनमुनि? क्रियाकाण्ड के विकल्प से रहित हैं। आहाहा! अन्दर है या नहीं? **परमनैष्कर्म्यवृत्तिवाले...** पंच महाव्रतादि के परिणाम की क्रिया, वह तो राग है। उससे रहित नैष्कर्म्यवृत्तिवाले। आहाहा! पाँच समिति और गुप्ति, आहार और पानी लेना-देना, वह तो सब क्रिया है, राग है। नैष्कर्म्य अन्दर चैतन्यमूर्ति में रहना, क्रियाकाण्ड से रहित अन्दर में जाना। ऐसे **(परम निष्कर्म परिणतिवाले) परम तपोधन...** परम तपोधन मुनि। आहाहा! नग्नमुनि जंगल में बसनेवाले, अन्दर आत्मा का ध्यान करनेवाले। आहाहा! अन्तर में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का आराधन करनेवाले। उन्हें यहाँ मुनि कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : धन तो है, तपोधन कहा न मुनि को!

पूज्य गुरुदेवश्री : तपोधन—तपरूपी धन। आत्मा के आनन्द और शान्तिरूपी धन। यह धूल नहीं। पैसा तो धूल है। मिट्टी है, धूल है। यह तो तपोधन। अन्दर इच्छा का निरोध करके आनन्द प्रगट करे, वह आनन्द धन है। तपोधन। तप—इच्छा निरोध करके अन्दर आनन्द में उग्रता लाना, चारित्र सहित आनन्द की वृद्धि करना, इसका नाम यहाँ तपोधन कहते हैं। वह तप धन है, बाकी सब व्यर्थ है। आहाहा!

परम तपोधन भी (शुद्ध) रत्नत्रय की भक्ति करते हैं। मुनि भी अन्दर शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करते हैं। पंच महाव्रत के विकल्प, वह नहीं। उन्हें तो जानते हैं। जानते हैं—ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। अन्तर शुद्धरत्नत्रय की भक्ति करे, उसे सच्चा मुनि कहते हैं। आनन्द को पर्याय में प्रगट करके रमना, वह रत्नत्रय की भक्ति है। आहाहा! बात-बात में अन्तर, शब्द-शब्द में अन्तर। माना हो कुछ और निकले कुछ। अनादि काल से भटकता है, भटक मरता है। आहाहा! नरक और निगोद के अवतार करके। आहाहा! एक अन्तर्मुहूर्त में, एक श्वास में अठारह भव निगोद के—यह लहसुन और प्याज। डूंगली को क्या कहते हैं? प्याज। एक श्वास में अठारह भव। उसमें अन्तर्मुहूर्त ६६३३६ भव। ऐसे अनन्त बार किये। आहाहा! विचार कब किया है?

अन्तर्मुहूर्त—दो घड़ी। दो घड़ी में निगोद लीलफूग / काई। पानी में काई होती है

न ? और यह लहसुन और प्याज। आहाहा! इसमें जन्म लेकर एक श्वास में अठारह भव, अन्तर्मुहूर्त में ६६३३६ भव। आहाहा! गजब बात है! विचार कब किया है ? यह तो वह सब हो-हा... हो-हा... हो-हा... मरकर वहाँ जानेवाले हैं। आहाहा! दो घड़ी में निगोद में—प्याज के भव। ६६३३६ इतने भव किये—ऐसा भगवान का पाठ है। भगवान के श्रीमुख से आया, उसमें इतने भव उन्होंने कहे हैं। ऐसे एक बार नहीं, अनन्त बार वहाँ जन्मा और मरा है। ओहोहो! अनन्त काल व्यतीत हो गया। अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. आदिरहित काल। कहाँ रहा—इसकी इसे खबर नहीं। खबर नहीं कि मैं यहाँ से कहाँ जाऊँगा ? यह देह छोड़कर कहाँ जाऊँगा ? कुछ खबर नहीं होती, भान नहीं होता। आहाहा! आत्मा तो नित्य है। देह का नाश होगा। आत्मा का नाश होगा ? देह का भी नाश नहीं है। देह के परमाणु की पर्याय दूसरे परमाणुरूप होगी, इसका नाम नाश। परमाणुओं का तो कहाँ नाश होता है ? देहरूप परमाणु हैं, वे राखरूप होंगे, उसे नाश कहा जाता है। परमाणु का नाश नहीं होता। आहाहा! वैसे ही आत्मा का नाश नहीं होता। एक भव में से दूसरे भव में या तीसरे भव में (जाता है)। ऐसे अनन्त भव (किये)। आहाहा! पानी उतर जाए, ऐसा है।

अन्तर्मुहूर्त में ६६३३६ भव। मरे और उत्पन्न हो... मरे और उत्पन्न हो... मरे और उत्पन्न हो... मरे और उत्पन्न हो... आहाहा! अन्तर्मुहूर्त में ६६ हजार बार जन्मे और मरे। निगोद में, काई में। काई, लहसुन, प्याज। आहाहा! कांदा मूला। मूला होता है न ? मूला का सफेद कन्द। उसमें भी अनन्तकाय है। उसके पत्ते में असंख्य (शरीर) है। परन्तु कन्द है, उसमें एक टुकड़े में अनन्त जीव है। वहाँ एक श्वास में अठारह भव किये। अन्तर्मुहूर्त में ६६३३६ भव किये। आहाहा! अभी तक रहा कहाँ ? अनादि... अनादि... अनादि... अनादि... अनादि... आहाहा! आत्मा है या नहीं ? है तो कहाँ रहा ? इसने कहाँ विचार किया है ? आहाहा! मूढ़रूप से पाँच-पच्चीस लाख रुपये इकट्ठे हुए, कमाये तो मानो हम जीते। मरकर निगोद में जानेवाले हैं। आहाहा! कठिन बात है, प्रभु!

गत काल अनन्त गया। उस अनन्त की आदि है ?—कि इसके बाद... इसके बाद... इसके बाद... भव... भव... भव... भव... भव... आदिरहित अनन्त-अनन्त भव किये। आहाहा! इसे छूटने के लिये यह एक ही मार्ग है। इस आत्मा का अन्दर अनुभव होना। आहाहा! आहाहा! राग और दया, दान का भाव छोड़कर अन्तर आत्मा के आनन्द का अनुभव होना, यह एक ही धर्म है। बाकी दूसरा धर्म नहीं है। लोगों को भ्रमाकर, लोगों

को भ्रम में डाल दिया। आहाहा! अनुभव प्रकाश नाम दिया है न। प्रेमचन्द की लड़की। लड़का.. उसका अनुभवप्रकाश। लड़का छोटा दस महीने का। आहाहा! नाम तो दिया परन्तु... आहाहा!

गतकाल में अनन्त काल कहाँ रहा? प्रभु! तूने कभी विचार किया है? आहाहा! नरक और निगोद में अनन्त भव गये और जब तक मिथ्यात्व है, तब तक अनन्त भव करेगा। आहाहा! मिथ्यात्व से विरुद्ध प्रकृति, आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह तपोधन भी करते हैं। श्रावक तो अन्तर का ध्यान करते हैं, परन्तु मुनि भी... है न? **(परम निष्कर्म परिणतिवाले) परम तपोधन भी (शुद्ध) रत्नत्रय की भक्ति करते हैं।** आहाहा! वे पंच महाव्रत पालते हैं—ऐसा नहीं। नग्न नहीं। वह कोई मुनिपना नहीं है। अन्तर आनन्दस्वरूप की भक्ति करते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द की रमणता में रमे, उसका नाम मुनि है। आहाहा!

यह कहा न? **भवभयभीरु, परमनैष्कर्म्यवृत्तिवाले....** क्रियाकाण्ड की वृत्ति से रहित। आहाहा! **(परम निष्कर्म परिणतिवाले) परम तपोधन...** अन्तर में आनन्द में रमनेवाले। आहाहा! वे **भी (शुद्ध) रत्नत्रय की भक्ति करते हैं।** वे अन्तर के आनन्द की भक्ति करते हैं। आहाहा! आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु है। सत्-चिदानन्द, सत्-चिदानन्द—ज्ञान और आनन्द का प्रभु है। उसका अस्तित्व आत्मा की मौजूदगी, अस्ति, अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञानादि गुण के स्वभाव की अस्ति है। राग-द्वेष का तो नाश होता है। होते हैं और नाश पाते हैं और भटकते हैं, उसकी मूल अस्ति तो यह है। मुनि उसकी भक्ति करते हैं तो मुनि कहलाते हैं। आहाहा! पंच महाव्रत और नग्नपना ले लेवे तो मुनि है-ऐसा नहीं। आहाहा!

उन परम श्रावकों तथा परम तपोधनों को... आहाहा! वे परम श्रावक। देखा? अन्तर के ध्यान में, अन्तर के आनन्द के ध्यान में आचरण करनेवाले। आहाहा! **उन परम श्रावकों तथा परम तपोधनों को जिनवरों की कही हुई...** जिनवर त्रिलोकनाथ जैन परमेश्वर ने कहीं हुई **निर्वाणभक्ति...** आहाहा! जिनवरों ने कही हुई। जिनवरों ने भी... श्रावक जो अन्तर आनन्द में रहे, अतीन्द्रिय आनन्द की अन्दर दृष्टि करके रमते हैं, उन्हें जिनवरों ने कही हुई भक्ति होती है। है? आहाहा!

जिनवरों की कही हुई निर्वाणभक्ति—अपुनर्भवरूपी स्त्री की सेवा— अपुनर्भव-अब भव ही नहीं। आहाहा! **अपुनर्भवरूपी स्त्री की सेवा—वर्तती है।** आहाहा! वह तो अन्तर अपुनर्भव के परिणाम वर्तते हैं। भव करे—ऐसे परिणाम उसमें है ही नहीं। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के परिणाम, जिसे भव नहीं, वे अपुनर्भव में ही रमते हैं। भव करने का जो भाव है, उसे छोड़ देते हैं। आहाहा! श्रावकों और मुनियों—दोनों को ऐसी भक्ति होती है। उसका नाम सच्ची भक्ति कही जाती है। आहाहा! यह तो भगवान की भक्ति सबेरे पूजा करे और स्वाहा... स्वाहा... और स्वाहा... हो गयी भक्ति। धूल में भी नहीं। शुभभाव का भी ठिकाना नहीं है तो शुद्ध की भक्ति तो है ही कहाँ? आहाहा!

निर्वाणभक्ति। श्रावक को भी, पहली प्रतिमावाले को भी निर्वाणभक्ति है—ऐसा कहा है। ऐसा कहा न? सम्यग्दृष्टि-अनुभवी आनन्द का अनुभव करनेवाला सम्यग्दृष्टि प्रथम पाँचवें गुणस्थान में है, वह भी निर्वाणभक्ति करता है, मोक्ष की भक्ति करता है। आहाहा! अन्दर है या नहीं? यह जिनवर की वाणी है। त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव परमात्मा विराजमान हैं, उनकी यह वाणी है। वहाँ से आये हुए। कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे, आठ दिन रहे, वहाँ से आकर यह बनाया। उसमें यह जो नियमसार है, वह तो मुनिराज (आचार्यदेव) कहते हैं कि मैंने मेरे लिये बनाया है। कुन्दकुन्दाचार्य। 'मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी, मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलम्।' वे कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैंने तो मेरे लिये यह बनाया है। आहाहा! अन्त में १८७ (गाथा में कहते हैं), आहाहा! मेरी भावना के लिये '**णियभावणाणिमित्तं मए कदयिमसारणामसुदं**' आहाहा! नियमसार।

मुमुक्षु : उन्होंने तो मूल गाथाएँ की हैं। टीका तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल गाथा है न! और मूल गाथाओं का विस्तार टीकाकार ने किया है। टीका में, भाव है, उसका विस्तार किया है। आहाहा! पद्मप्रभमलधारिदेव एक ही मिले इसकी टीका करनेवाले। वापस दूसरे कोई टीका करनेवाले मिले भी नहीं। आहाहा! दिगम्बर सन्त वन में बसनेवाले, सिद्ध के साथ बातें करनेवाले। यह ऐसी चीज़ है। आहाहा!

श्लोक-२२०

[अब इस १३४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं:]

(मंदाक्रान्ता)

सम्यक्त्वेऽस्मिन् भव-भयहरे शुद्धबोधे चरित्रे,
भक्तिं कुर्यादनिशमतुलां यो भवच्छेददक्षाम्।
काम-क्रोधाद्यखिल-दुरघव्रात-निर्मुक्तचेता:,
भक्तो भक्तो भवति सततं श्रावक: संयमी वा ।।२२०।।

(वीरछन्द)

भवभयहारी सम्यग्दर्शन शुद्धज्ञान अरु चारित्र की।
करें निरन्तर अतुलनीय जो भवछेदक अनुपम भक्ति॥
कामादिक सब दुष्ट पापघन से विमुक्त उसका चित हो।
श्रावक हो अथवा संयमयुत जीव भक्त है भक्त अहो!॥२२०॥

[श्लोकार्थ:] जो जीव भवभय के हरनेवाले इस सम्यक्त्व की, शुद्ध ज्ञान की और चारित्र की भवछेदक अतुल भक्ति निरन्तर करता है, वह कामक्रोधादि समस्त दुष्ट पापसमूह से मुक्त चित्तवाला जीव-श्रावक हो अथवा संयमी हो—निरन्तर भक्त है, भक्त है॥२२०॥

श्लोक- २२० पर प्रवचन

[अब इस १३४वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं:]

श्लोक २२०।

सम्यक्त्वेऽस्मिन् भव-भयहरे शुद्धबोधे चरित्रे,
भक्तिं कुर्यादनिशमतुलां यो भवच्छेददक्षाम्।

काम-क्रोधाद्यखिल-दुरघव्रात-निर्मुक्तचेता:,
भक्तो भक्तो भवति सततं श्रावक: संयमी वा ।।२२०।।

श्लोकार्थ: आहाहा! **जो जीव भवभय के हरनेवाले इस सम्यक्त्व की, शुद्ध ज्ञान की और चारित्र की भवछेदक...** आहाहा! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप प्रभु, उसके अन्दर सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद जिसे आया, वह आत्मा की भक्ति करता है। आहाहा! आहाहा! **जो जीव भवभय के हरनेवाले इस सम्यक्त्व की, शुद्ध ज्ञान की और चारित्र की...** आचरण था न ऊपर? वह **भवछेदक अतुल भक्ति...** भव का नाश करनेवाली अतुल—जिसे उपमा न दी जा सके, ऐसी अतुल भक्ति **निरन्तर करता है,...** आहाहा! **वह कामक्रोधादि समस्त दुष्ट पापसमूह से मुक्त चित्तवाला जीव**- आहाहा! पुण्य और पाप से रहित अन्तर आनन्दस्वरूप में लीनता करनेवाले श्रावक और मुनि हैं।

श्रावक हो अथवा संयमी हो—निरन्तर भक्त है, भक्त है। आहाहा! दो बार आवाज की। आहाहा! अन्तर आनन्दस्वरूप में जो भक्ति करते हैं, वे श्रावक हों या मुनि, सच्चे भक्त हैं-भक्त हैं। बाकी सब नामधारी हैं। आहाहा! विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)